वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण ११, मंगलवार, दिनाङ्क १४-०६-१९६६
गाथा १९ से २० प्रवचन नं. ८

योगसार शास्त्र है। योगसार अर्थात् क्या ? योगसार है न ? आत्मा का हित जिसमें से प्रगट हो – ऐसा आत्मा, उसके अन्दर की एकाग्रता का भाव, उसे यहाँ योगसार कहते हैं। समझ में आया ? आत्मा वस्तु है, उसकी एकाग्रता, वस्तु के स्वभाव में एकाग्रता, उसे यहाँ योग कहते हैं। योग का यह सार है कि वीतरागता प्रगट करना और वीतरागता प्रगट करके पूर्ण आनन्द मुक्तिरूपी दशा प्राप्त हो – ऐसे भाव को योगसार कहते हैं। समझ में आया ?

जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु, जिणु झायहु सुमणेण।
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण॥१९॥

शुद्धभाव से जिनेन्द्र का स्मरण करो.... अर्थात् क्या ? जिनेन्द्र अर्थात् वीतराग परमात्मा, जो पूर्ण सिद्धभगवान हो गये – ऐसा ही यह आत्मा, जिनेन्द्रस्वरूप है। जिनेन्द्र का स्मरण करना अर्थात् ? उस वीतरागस्वरूप पूर्णपद की प्राप्ति में पहुँच गये – ऐसा ही मेरा जिनेन्द्र का अन्तरस्वरूप है। यदि ऐसा स्वरूप न होवे तो पर्याय में जिनेन्द्रता, वीतरागता, पूर्ण निर्दोषता (जो) परमात्मा ने प्राप्त की, वह कहाँ से आयी ?

मुमुक्षु – ऐसा विचार करना है ?

उत्तर – भटकना न होवे तो विचार करना। हैं ? आहा...हा...!

कहते हैं, **शुद्धभाव से....** अर्थात् मैं एक आत्मा, वीतरागी-रागरहित की दशा द्वारा भगवान आत्मा का स्मरण करता हूँ – इसका नाम जिनेन्द्र का स्मरण है। समझ में आया ? निमित्त का संग्रह या राग का आश्रय, वह जिनेन्द्र का स्मरण नहीं; वह विकार का स्मरण

है। समझ में आया? संयोगों का संग्रह करूँ या मैं राग को रखूँ – यह सब विकारीभाव, यह विकार का स्मरण है।

मुमुक्षु – निमित्त को ढूँढना यह (विकार का स्मरण)?

उत्तर – संग्रह करना, उन्हें एकत्रित करूँ, मुझे कुछ लाभ मिले – यह तो विकार का स्मरण है। इसमें कहाँ निमित्त था? समझ में आया? और पुण्य-पाप का राग आवे, उसके स्मरण का अर्थ कि सदोषता का स्मरण करना। इसमें तो जिनेन्द्र से विरुद्ध विकारभाव का स्मरण किया है। यह तो संसार अनादि का है, वही है।

मुमुक्षु – उसके शुभभाव से तो क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है।

उत्तर – धूल में भी नहीं होता, अब उसे बेचारे को क्या कहना? उसकी लाईन अभी ऐसी हो गयी है। ओ...हो...! बड़ी जवाबदारी होती है। जीव कितनी जवाबदारी ओढ़ता है, देखो न! ओ...हो...हो...! देखो न, कल आया था न? मैं तीर्थंकर हूँ, तीर्थंकर.... धर्म का... है?

मुमुक्षु – बागी....

उत्तर – बागी क्या किन्तु पूरा विरोधी। ओ...हो...हो...! बोलता था – मुझे नया धर्म (चलाना है)। पूरी दुनिया में तो धर्म है, उससे कुछ नया निकालूँ। इतना दशा गुलाँट मार डालती है जीव को। मैंने कहा – यह थोड़ा पुण्य है, वह जल जाएगा, हाँ! आहा...हा...! परन्तु कैसे सूझे? भाई! शरीर कुछ ठीक हो, वाणी का थोड़ा जोर हो, उघाड़ में कुछ वीर्य और ज्ञान का क्षयोपशम दिखता हो तो कहे, मैं ही परमेश्वर हूँ, परमेश्वर दूसरा कौन? ऐसा। दूसरे सर्वज्ञ परमेश्वर और जिनेन्द्र हैं, उनका स्वीकार करे कहाँ से? पूर्ण सर्वज्ञ परमेश्वर जगत में हैं, वीतरागपर्याय को प्राप्त परमात्मा हैं, उनका – उस सत्ता का स्वीकार किस प्रकार करना? हमारे तो यह राग और यह क्रिया, बस! दूसरे को जिमाना, यह करना, वह करना.... यह सब हमारा धर्म, जाओ! आहा....हा...!

यहाँ कहते हैं, भाई! जिस किसी जीव को सुख होना हो, अर्थात् स्वतन्त्र होना हो तो उसे तो जिनेन्द्र का स्मरण करना, अर्थात् जिनेन्द्र-समान मेरा स्वभाव है – उसका स्मरण करना। वह स्मरण कब कर सकता है? पहले निर्णय और धारणा की होवे तो। क्या

कहा ? जिनेन्द्र का स्मरण कौन कर सकता है ? मैं स्वयं भगवान परिपूर्ण परमात्मा मैं स्वयं हूँ; मेरे स्वभाव में पूर्णानन्द और पूर्ण निर्दोषता पड़ी है – ऐसा जिसे श्रद्धा में, धारणा में पहले आया हो, वह स्मरण कर सकता है। क्या कहा ?

जिसे जिसका प्रेम हो, वह उसका स्मरण करता है, है ? विवाह के समय में भी (ऐसा बोलते हैं) – यह एक बहिन नहीं आयी, बड़ी बहिन नहीं पहुँची... ऐसा विवाह का प्रसंग, वे नहीं पहुँचे, भानेज नहीं पहुँचे – ऐसे उसकी महिलाएँ करें। हैं ? ऐसा जिसका प्रेम है, उसे याद करते हैं; तो पहले आत्मा शुद्ध परिपूर्ण अखण्ड परमात्मा का स्वरूप, वही मेरा स्वरूप है – ऐसा जिसे निर्णय में प्रेम जगा हो, वह उसे बारम्बार स्मरण करता है। समझ में आया ? बात जरा ऐसी है, भाई !

इसका अर्थ यह कि आत्मा जिनेन्द्रस्वरूप है। जिनेन्द्र की पर्याय होती है न ? जिनेन्द्र, वे पर्यायरूप से – अवस्थारूप से पूर्ण हुए हैं। वह सिद्ध कहो या अरहन्त कहो। अब, वह दशा पूर्ण निर्दोष हुई, वह परमात्मा, आत्मा की दशा है; तो वह आत्मा की पूर्ण अनन्त गुण की निर्मलदशा आयी कहाँ से ? वह आत्मा में से आयी। किसी राग की क्रिया से, संयोग के साधन से नहीं आयी – ऐसा जिसने निर्णय किया कि ऐसे परमात्मा होते हैं, उसे निर्णय ऐसा आता है कि मैं स्वयं वस्तुपने परमात्मा हूँ। समझ में आया ?

मेरा स्वरूप ही वीतरागबिम्ब है। वस्तु में सदोषता का अंश नहीं, अपूर्णता नहीं – ऐसी मेरी चीज है, चीज है, वस्तु है। जिसने ऐसा निर्णय करके ज्ञान में धारणा, ज्ञान में धारणा (की), यह अनुभव करके यह चीज ऐसी है – ऐसा जिसका ज्ञान करके धारणा की हो, उसे बारम्बार स्मरण में आता है। समझ में आया ?

देखो न ! यह संसार का उछाला आता है या नहीं ? कमाने का, भोग का, प्रतिष्ठा का, क्योंकि अज्ञान में – मूढ़ता में उसका प्रेम है। बारम्बार (याद करता है)

अब उसमें दुःख का.... चार गति में भटकना।

मुमुक्षु – अभी तो मजा है न ?

उत्तर – धूल में भी मजा नहीं, अभी दुःखी है। कषाय के, राग के और कषाय के

फल में दुःखी है। घेरे में चढ़ा है। उत्साह कितना, प्रेम है तो ? ऐसे कमाना, ऐसे कमाना, ऐसे स्त्री-पुत्र, ऐसे विवाह करना, इस लड़के का विवाह कराना... आहा...हा... ! अकेली होली है। अकेले दुःख की घानी में पिलता है। सत्य होगा ? रतिभाई !

यहाँ तो दूसरा कहना है, जिसका जिसे प्रेम (होवे), उसे वह बारम्बार स्मरण करता है, क्योंकि उसका उसे उल्लसित वीर्य काम करता है, वीर्य पर में कुछ काम नहीं करता, परन्तु उल्लसित वीर्य (होवे), ऐसे वीर्य उल्लास में (होवे)... आ...हा... ! मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, मैं ऐसा करूँ..... समझ में आया ? मैंने ऐसा कमा दिया, पचास लाख एकत्रित किये, एक महीने में पचास लाख आमदनी की। ऐ...ई.... ! इसे – पारेख से कहते हैं। इसके भाई को याद किया। एक महीने में पचास लाख। हरिभाई के भाई हैं केशूभाई ! एक महीने में पचास लाख। फट जाए न प्याला ! दशाश्रीमाली बनिया है। है न ? इनके छोटे भाई हैं। समझ में आया ? उसमें कितना उत्साह आता है ? एकदम ऐसा डाला, दो लाख कमाये। अभी भाव बढ़ गया है। दो लाख के तीन लाख हुए हैं। इन तीन लाख का यह लो... ऐसा डाला वहाँ, उसका भाव दूसरे अमुक देश में बढ़ गया है। उस देश में बिक्री करें तो तीन के पाँच लाख होंगे। शीघ्रता करे, ऐसे वीर्य काम कितना करे, लो ! मूढ़ है। वह तो राग का वीर्य है। वहाँ कहाँ आत्मा का वीर्य पूर्ण है ?

मुमुक्षु – ऐसा राग नहीं करे तो रुपये नहीं आते।

उत्तर – धूल में, पैसा तो आनेवाला हो वह आता ही है। राग के कारण पैसा आता है ? परन्तु जिसका जिसे प्रेम, (वहाँ वीर्य काम करता है।) 'रुचि अनुयायी वीर्य' जिसकी जिसे रुचि, उसका वीर्य वहाँ काम किये बिना नहीं रहता। उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसका वीर्य, उसका आचरण उसमें काम किया करता है। दुःख में.... दुःख में... दुःख में।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि 'जिन सुमरो' – तुझे जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो कि यह आत्मा स्वयं सुखी कैसे हो ? जिसे आत्मा की दया आवे... समझ में आया ? आत्मा की दया आवे। अरे... ! यह आत्मा... ! यह अनन्त काल से चौरासी के अवतार में कहीं कोई शरण नहीं। कहीं कोई आधार नहीं; अकेला दुःखी होकर तड़फड़ाता है, तड़फड़ाता है। चौरासी के अवतार में तड़फड़ाता है, हाँ ! ये सब सेठिया-बेठिया इस विकार के दुःख

में तड़फड़ाते हैं। आहा...हा... ! कैसे होगा ? मनसुखभाई ! आहा...हा... ! ऐसी इसे दया आनी चाहिए। अरे ! आत्मा ! अब तुझे किंचित सुख हो – ऐसा रास्ता ले, भाई ! ये सब दु:ख के रास्ते हैं। इस सुखी होने के रास्ते में जिनेन्द्रस्वरूप मेरा है – ऐसा निर्णय करना, यह सुख का साधन वहाँ से प्रगट हो – ऐसा है। समझ में आया ? यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

'योगसार' जोड़ना है न वहाँ ? कौन है ? कि मैं जिनेन्द्रस्वरूप हूँ। मैं जिनेन्द्रस्वरूप न होऊँ तो जिनेन्द्रदशा आयेगी कहाँ से ? समझ में आया ? प्राप्त की प्राप्ति है। मेरी चीज में ही समस्त पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान जो प्रगट होना है, वह सब मेरे पास है। मैं स्वयं पूर्णरूप पड़ा हूँ – ऐसा जिसे श्रद्धा में, ज्ञान में, धारणा में न ले तो उसे स्मरण में कहाँ से आयेगा ? श्रद्धा, ज्ञान में पहले लिया है। समझ में आया ? इससे **शुद्धभाव से जिनेन्द्र का स्मरण करो, जिनेन्द्र का चिन्तवन करो....** स्मरण करके बारम्बार उसकी एकाग्रता करो – ऐसा कहते हैं। स्मरण करके उसका घोलन करो।

भगवान आत्मा सार में सार पदार्थ (है।) बारह अंग में कथित तत्त्व, बारह अंग में भगवान द्वारा कहा गया पदार्थ, वह यह जिनेन्द्र प्रभु आत्मा – यह सार में सार है। समझ में आया ? उसका चिन्तवन करो। स्मृति करके, फिर बारम्बार उसमें एकाग्र होओ। भाई ! इस वस्तुस्वरूप परमानन्द की मूर्ति में चिन्तवन करने से सुख की, शान्ति की, मोक्ष के मार्ग की प्राप्ति होती है। चिन्तवन करो, यह योगसार है।

जिण झायहु विशेष **ध्यान करो।** फिर लीन होओ, लीन होओ। वीतराग परमात्मा मैं स्वयं हूँ। उसका स्मरण, चिन्तवन और ध्यान। उसकी लीनता कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत का स्वाद आता है। समझ में आया ? जो यह दु:ख का स्वाद (आता है), चौरासी के अवतार में एकेन्द्रिय से लेकर, आहा...हा... ! त्रस की स्थिति, त्रस में रहा है, यह दो हजार सागरोपम कठिनता से रहे। त्रस में स्थिति रहे तो दो हजार सागरोपम रहे। स्थिति पूरी हो तो लम्बी स्थिति में एकेन्द्रिय में जाता है। समझ में आया ? इस जिनेन्द्र आत्मा में स्मरण और ध्यान बिना। इस विकार के स्मरण और ध्यान द्वारा त्रस हुआ, त्रस की स्थिति पूरी होगी (तो) एकेन्द्रिय में निगोद... निगोद, जिसमें अनन्त काल मनुष्य का अवतार नहीं (होगा) – ऐसे स्थान में जाएगा। अन्तर्मुहूर्त में कितने भव करता है यह ?

समझ में आता है ? एक श्वासोच्छ्वास में अठारह भव। आहा...हा... ! समझ में आया ? एक श्वासोच्छ्वास में। आहा...हा... !

कहते हैं, जिसे राग और विकार का प्रेम है, उसका स्मरण है, उसका चिन्तवन है, उसका जिसे ध्यान है, वह तो क्रम-क्रम से कदाचित् त्रस में आया हो, परन्तु जहाँ विशेष एकाग्रता की चीज है, वहाँ वह निगोद में जाएगा। समझ में आया ? यह जिनेन्द्र के स्मरणवाला, भगवान आत्मा अमृत अतीन्द्रियस्वरूप, मेरा स्वरूप ही त्रिकाल वीतराग है – उसके स्मरणवाला, चिन्तवनवाला, ध्यानवाला (परम पद पायेगा)। ध्यान रखना।

उसका स्मरण करने से एक क्षण में परमपद प्राप्त हो जाता है। अज्ञानी को राग के ध्यान में त्रस की स्थिति पूरी हो जाएगी और एकेन्द्रिय में जाएगा, वहाँ अनन्त काल पड़ा रहेगा। इस बन्धन के फल की उत्कृष्टदशा, निगोददशा है। रतिभाई ! समझ में आया ? बड़ी जेल ! आत्मा गुलाँट खाता है। अरे... ! आत्मा ! तू परमानन्द (स्वरूप) है न, और इस परिभ्रमण के पन्थ में कहाँ गया ? तुझमें परिभ्रमण के पन्थ का अभाव करने की ताकत है – ऐसा तू आत्मा है। परमात्मा ने उसका (परिभ्रमण का) अभाव किया है। परमात्मा ने – अरहन्त ने भव का अभाव किया है। इस आत्मा के भव का अभाव करने की ताकतवाला, वह ही मैं आत्मा हूँ। समझ में आया ? बात भी ऐसी क्या (है) !

उसे **एक क्षण में परमपद प्राप्त....** (हो जाता है)। देखो ! आहा...हा... ! पहले तो ध्यान करते जो अल्प काल रहे श्रावकदशा में; मुनिदशा में रहे तो अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होवे। थोड़े अतीन्द्रिय आनन्द की (प्राप्ति होवे)। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन में भी अन्तर के ध्यान में क्षणभर भी रहे तो भी उसे जिनेन्द्र वीतराग परमेश्वर स्वयं, उसमें से उसे आनन्द की धारा बहे। आगे बढ़ते हुए स्थिर होवे तो विशेष आनन्द श्रावक की दशा में हो। आगे होवे तो मुनिदशा में विशेष आनन्द हो और पूर्ण लीन हो जाए (तो) पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की परमात्मदशा प्राप्त होती है। समझ में आया ? आहा...हा... ! एक क्षण में पाँच करोड़ रुपये मिले हों.... एक करोड़ का बँगला एक क्षण में बनाना हो तो बना सकते हैं ? हैं ? यह एक क्षण में केवलज्ञान का बँगला प्रगट करे – ऐसा आत्मा तैयार है। समझ में आया ? हैं ?

यहाँ 'योगसार' हैं। भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति प्रभु, अकेली ज्ञान की कतली-ज्ञान की मूर्ति ज्ञानसूर्य, यह वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। उसका ध्यान करने से, उसे ध्येय बनाकर लीन होने से क्षण में, क्षण में, क्षण में केवलज्ञान पाता है। जो सादि -अनन्त काल रहे, वैसी दशा क्षण में प्राप्त करता है – ऐसा साधन आत्मा में है। समझ में आया? आहा...हा...! आत्मा कितना और कैसा है – यह बात इसे जमती नहीं, जमती नहीं। हैं?

किया नहीं, सन्मुख देखा नहीं। ऐसे के ऐसे अवतार सब इसने व्यतीत किये। शान्तिभाई! आहा...हा...! धूल की और यह किया। अधिक तो फुरसत होवे तो थोड़ा सा लाओ पूजा करें, एक-दो घड़ी सामायिक करेंगे.... परन्तु सामायिक किसकी? अभी वस्तु कौन है? कहाँ है? किसमें लीनता करनी है? – यह तो पता ही नहीं होता! तू सामायिक कहाँ से लाया? सामायिक अर्थात् समता.... तो समता का पिण्ड परमात्मा स्वयं वीतरागी मूर्ति (है) – ऐसी दृष्टि हुए बिना, उसमें स्थिरता की क्रिया किस प्रकार होगी? समझ में आया? अनादि से राग, पुण्य और विकल्प को देखा है, देखा है, जाना है और यह बाहर की क्रिया होती है, वह देखा है। वहाँ स्थिर होगा, वह तो राग में स्थिर हुआ। वहाँ कहाँ सामायिक थी? समझ में आया? भगवान की पूजा की, परन्तु कौन सा भगवान? उन भगवान की पूजा की, वह तो शुभभाव, राग है। यह भगवान वीतराग है और वे भी वीतराग परमात्मा हैं, तो वीतरागता की पूजा वीतरागभाव से हो सकती है। समझ में आया? उनके जाति के भात से उनकी पूजा होती है।

भगवान आत्मा.... तीन शब्द में आचार्य ने समाहित कर दिया है, लो! **सो झाहंतह** ऐसा जो ध्यान करे। भगवान आत्मा को रुचि में लेकर, ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाकर; दूसरे सब ज्ञान में ज्ञेय बनाता है, उन्हें छोड़ दे। दूसरे का, राग का निमित्त का विश्वास छोड़ दे। भगवान आत्मा वीतराग हूँ – ऐसा विश्वास (लावे) और उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान (करे) – यह उसका स्मरण और चिन्तवन (करके) उसमें स्थिर हो तो क्षण में केवल (ज्ञान) प्राप्त करे। आहा...हा...! समझ में आया? तो फिर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अंश में भी स्वरूप में स्थिर हो, उतना उसे अमृत का आनन्द आता है। वह आनन्द उसे पूरे जगत का

प्रेम बताता है, ओ...हो...! सभी परमात्मा है न! यह परमात्मा हैं, सब प्रभु हैं! उनकी भूल है, वह एक समय में है। परमात्मा है, इसलिए किसी आत्मा के प्रति उसे विषमभाव नहीं होता। समझ में आया? यह सब परमात्मा के पेट हैं। सभी आत्माएँ परमात्मस्वरूप परमात्मा हैं। उनकी एक समय की दशा में विकृतता है परन्तु जिसने विकृतदशा का स्वभाव के आश्रय से नाश किया और स्वभाव चैतन्य जिनेन्द्र-समान जाना, माना – ऐसा ही स्वभाव सभी भगवान आत्माओं का है; इसलिए किसे कहना छोटा और किसे कहना बड़ा? यह श्लोक इसमें आयेगा? समझ में आया? बीस में आता है। किसमें आता है? बीस में। **सुद्धप्पा अरु जिणवरहं भेउ म किमपि वियाणि।** समझ में आया?

गाथाएँ तो सार-सार रखी हैं। योगसार है न! कहते हैं, जिसकी नजर में वीतरागता की कीमत हुई; जिसके ज्ञान में, जिसकी श्रद्धा में वीतरागस्वभाव – ऐसे भगवान आत्मा की कीमत हुई, वहाँ उसे बारम्बार चिन्तवन कर, याद करके, चिन्तवन करके स्थिर होता है। अल्प काल स्थिर हो तो इतना थोड़ा आनन्द आता है, विशेष काल स्थिर हो जाये तो उसे क्षण में केवलज्ञान हो जाता है। है न? **सो झाहंतह परमपउ लब्भइ एक्कखणेण।** परमपद, परमात्मा एक क्षण में हो जाता है। समझ में आया?

आनन्दघनजी में दृष्टान्त आता है, इसमें भी कहीं आता होगा। 'भृंगी इलिकाने चटकावे ते भृंगी जग जोवे रे....' इल्ली होती है न, इल्ली, वह होती है न? क्या कहलाती है वह? भंवरी.... भंवरी...। वह भंवरी इल्ली ले आती है? फिर डाले उसमें, दरार करते हैं? उसमें डाले। उसे अन्दर ऐसे डंक मारे। ....इल्ली को भंवरी डंक मारे, डंक मारे – ऐसी उसे धुन चढ़ती है। धुन चढ़कर कहते हैं.... यह तो एक दृष्टान्त है, हाँ! यह इल्ली मिटकर भंवरी होती है, नहीं आते सफेद वे? दरार... दरार... भंवरी का दरार (घर) नहीं (होता)? ऐसे धूल के.... उसमें इल्ली बहुत आती है। वह फिर पंख हो जाता है, इसलिए भंवरी होकर उड़ जाती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा वीतरागता के स्वभाव से भरा हुआ ऐसा दृष्टि और ज्ञान का डंक लगा, वह स्थिर होने पर एकदम उड़ जाता है, केवलज्ञान होकर परमात्मा हो जाता

है। नर का नारायण हो जाता है, आत्मा का परमात्मा हो जाता है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु – डंक मारता है।

उत्तर – डंक झेलने जैसा है। पत्थर में कोई डंक लागे? ऐसे अन्दर से धुन चढ़ती है। एकदम इल्ली का भव समाप्त, भँवरी का भव हो जाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तुपने, वस्तुरूप से वीतरागस्वरूप अकेला परिपूर्ण एक आत्मा भगवान परिपूर्ण है। यह फिर कोई बात है विश्वास की! यह विश्वास कौन करे? समझ में आया?

मेरा परमपद निजानन्द परिपूर्ण भगवानस्वरूप विराजमान त्रिकाल मेरा स्वरूप है। ऐसी जिसे अन्तररुचि में, अन्तर ज्ञान होकर विश्वास आया, कहते हैं – उसकी जहाँ लगन लगी, जाओ! परमात्मा मुक्तदशा सादि अनन्त सिद्ध (हो गया)। अन्दर भँवरी का चटका लगा। मैं परमात्मा समान हूँ, परमात्मा समान हूँ, परमात्मा मैं हूँ; समान भी नहीं – ऐसा ध्यान करते... करते... करते स्वयं परमात्मा हो जाता है। मैं रागी हूँ और राग का कर्ता हूँ और देह की क्रिया का कर्ता हूँ, वह मूढ़ है। समझ में आया?

मुमुक्षु – वह तो व्यवहार से कर्ता है।

उत्तर – धूल भी कर्ता नहीं। कर्ता किस दिन था? कर्ता होवे तो तन्मय हो जाये; राग का कर्ता और पर का कर्ता होवे तो तन्मय अर्थात् तद्रूप आत्मा हो जाये (परन्तु) उसरूप हुआ नहीं। समझ में आया? इसलिए तो यहाँ कहते हैं – जिनेन्द्र का स्मरण परमपद का कारण है। भगवान आत्मा वीतरागस्वभाव, वह परमपद का कारण है। लो, एक गाथा यह हुई। फिर तो इन्होंने इसमें लम्बा बहुत लिखा है। अब बीस –

☆ ★ ☆

अपनी आत्मा में व जिनेन्द्र में भेद नहीं

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एउ वियाणी॥२०॥

जिनवर अरु शुद्धातम में, भेद न किञ्चित् जान।
मोक्षार्थ हे योगिजन! निश्चय से तू यह मान॥

अन्वयार्थ – (जोईया) हे योगी! **(सुद्धप्पा अरु जिणवरहं किमपि भेउ म वियाणी)** अपने शुद्धात्मा में और जिनेन्द्र में कोई भी भेद मत समझो। **(मोक्खह कारण णिच्छइ एउ वियाणी)** मोक्ष का साधन निश्चयनय से यही मानो।

☆ ★ ☆

अपनी आत्मा में व जिनेन्द्र में भेद नहीं। देखो! लो! यह सब सार-सार श्लोक रखे हैं न। अपने आत्मा में (अर्थात्) वस्तु आत्मा, हाँ! एक समय की दशा में विकार और अल्पज्ञता है, वह कहीं आत्मा का पूर्णरूप नहीं, असली आत्मा वह नहीं। समझ में आया? एक समय की अल्पज्ञदशा, वर्तमान पर्याय और राग, वह कोई आत्मा का असली स्वरूप नहीं है; वह तो विकृत और अपूर्णरूप है। विकृत – पुण्य-पाप का विकार, वह विकृत है और अल्पज्ञ आदि, वह उसका अपूर्णरूप है। क्या कहा?

भगवान आत्मा के एक समय में तीन प्रकार हैं। बाहर की बात एक ओर रहो... शरीर और कर्म उसमें है नहीं, वह तो एक अलग बात रह गयी। उसमें पुण्य और पाप का विकार है या भ्रान्ति है, या यह मुझे ठीक है, वह तो विपरीतभाव है, विपरीतभाव है; वह कहीं आत्मा का रूप नहीं है और उसे जाननेवाली वर्तमान प्रगट अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, वीर्यता – जो प्रगट क्षयोपशमरूप वीर्य है, वह तो अल्पता है, अल्प है, अंश है; वह कहीं परिपूर्णरूप नहीं है; इसलिए वह अंश और उसका यह विकृतरूप और अल्पज्ञता को पूरा आत्मा मानने से, उसे ही आत्मा का पूरा (स्वरूप) मानकर उसमें भटक रहा है। समझ में आया? इसलिए उसका अल्पज्ञता का रूप और विकृति का रूप – दोनों की रुचि छोड़कर इसका सर्वज्ञ का रूप और निर्दोष वीतरागी स्वरूप उसका है। समझ में आया?

जब एक समय की पर्याय में अल्पज्ञता है, तब स्वयं सर्वज्ञ है; पर्याय में जब रागादि भाव है तो स्वयं वीतराग का बिम्ब है। समझ में आया?

यह कहते हैं कि **अपने आत्मा में...** ऐसा आत्मा **और जिनेन्द्र में भेद नहीं है...**

जिनेन्द्र भगवान का द्रव्य और गुण पूर्ण शुद्ध है, ऐसा ही मेरा शुद्ध है। उनकी पर्याय शुद्ध हो गयी – अपूर्ण की पूर्ण हो गयी; विकारी की अविकारी वीतराग हो गयी। समझ में आया? कर्म के साथ में सम्बन्ध नहीं। परवस्तु के साथ वहाँ कोई काम नहीं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें अल्पज्ञता थी, उन्हें सर्वज्ञता हुई, वह त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से, अन्दर परमात्मस्वरूप है, उसके अवलम्बन से। राग के अभाव में वीतरागता हुई। ऐसी ही सर्वज्ञता और वीतरागता, वह मेरे स्वरूप में – मुझ में पड़ी है। समझ में आया? अकेली सर्वज्ञता और अकेली वीतरागता.... ऐसी आत्मा में, ऐसी जिनेन्द्र में। रतिभाई! इसमें कुछ समझ में आता है?

मुमुक्षु – दीपक जैसी बात है।

उत्तर – दीपक जैसी बात है?

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एउ वियाणी॥२०॥

आहा...हा...हा...! अकेला मक्खन डाला है! समझे न? घेवर जैसा, वह क्या कहलाता है मीठा तरल परोसा है। दाँत की जरूर नहीं पड़े, लो, बिना दाँत के लड़के भी खायें, दाँतवाले खायें, युवा खायें और वृद्ध भी खायें। ऐसा यह आत्मा है, कहते हैं। समझ में आया? हैं? चोकठा-बोखटा वहाँ था कब?

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एउ वियाणी॥२०॥

हे योगी! योगी अर्थात् ध्यानी, ज्ञानी। अरे...! तेरे स्वरूप की तुझे कीमत हुई है, उसकी यहाँ बात करते हैं! इस तेरे स्वरूप की तुझे कीमत हुई है, तेरे स्वरूप की कीमत वह अल्पज्ञता में जो ले ली गयी थी, राग में जो ले ली गयी थी, तूने तेरे स्वरूप की कीमत की; इसलिए तू योगी और ध्यानी कहा गया है। आहा...हा...! जिसमें जिसकी कीमत लगी, उसमें उसकी लगन लगी। हैं? एक गहना पाँच लाख का, पचास हजार का आवे तो कैसा सम्हाले? ऐसा सम्हाले.... यहाँ रखना, अमुक जगह रखना, अमुक रखना।

अस्सी हजार का तो हीरा हो इतना रत्ती भर और एक रत्ती का दस हजार रुपया.... आता है न इतना हीरा अस्सी हजार का ? लाख-लाख, दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख का हीरा उसे सम्हाले, उसे डिब्बी में ऐसा रखूँगा, उसका ऐसा करना, उसका ऐसा करना, आहा...हा... ! उसकी उसे कीमत हुई है, इसलिए उसे सम्हालने में बारम्बार झुकाव (होता है)। भगवान आत्मा शुद्धात्मा, हे योगी ! **'किमपि भेउ म वियाणि' अपने शुद्धात्मा में और जिनेन्द्र में कुछ भी भेद मत समझो।** आहा...हा... ! अन्तर झुकाव में जहाँ वीतरागी चैतन्य की कीमत हुई है, उस राग के भाव से वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा को जहाँ भिन्न जाना है, कहते हैं कि ऐसे आत्मा को और परमात्मा में जरा भी भेद मत मान, हाँ! आहा...हा... ! सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग देव अपने ज्ञान से सब जानते हैं। सब भिन्न है – ऐसा जानते हैं। मैं यह और यह, ऐसा भिन्न है, वैसा जानते हैं। उनमें और तुझमें कुछ अन्तर नहीं है। तू भी एक जाननहार ज्ञानस्वरूप से अल्पज्ञ और सर्वज्ञ को लक्ष्य में लेकर – अल्पज्ञ पर्याय द्वारा सर्वज्ञ पद को लक्ष्य में लेकर यह सर्वज्ञ से अधिक जानते हैं तू अल्पज्ञ पर्याय (द्वारा) सर्वज्ञ अपनी पर्याय के लक्ष्य में लेकर यह जानने का काम करे, उसमें सर्वज्ञ और परमात्मा में कुछ भेद नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु – महापुरुष की दृष्टि तो बहुत विशाल और उदार होती है।

उत्तर – उदार होती नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा होता है। वस्तुस्वभाव ऐसा है। यहाँ यह कहना है। देखो ! यहाँ तो ऐसा कहा है। **सुद्धप्पा अरु जिणवरहं भेउ म किमपि वियाणि।** भेद मत जान। यह अलग मत जान और अलग मत कर। आहा...हा... ! सम्यग्ज्ञानदीपिका में कहते हैं, एक क्षण भी शुद्ध परमात्मा से अलग माने, वह मिथ्यादृष्टि संसारी है। किस अपेक्षा से ? एक क्षण भी सिद्ध भगवान परमात्मा से मैं अलग हूँ – ऐसा जाननेवाला, उसमें राग और विकल्प की एकता मानी है, राग का कर्ता होकर, पर का कर्ता होकर रुका है, वह सर्वज्ञ के पद से यहाँ अलग पड़ा है। समझ में आया ?

परमात्मा का वीतराग पद, उसमें से क्षणभर भी अलग रहा (तो) मूढ़ मिथ्यादृष्टि संसारी निगोदवासी है। क्यों ? कि, वह सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्र भी जानते... जानते... जानते... हैं। भले पूर्ण पर्याय द्वारा जानते हैं और तू अल्पज्ञ भी सर्वज्ञ पूर्ण... पूर्ण स्वभाव

के आश्रय होकर जानता है। समझ में आया ? रागादिक भाव आवें उनका यह कर्ता नहीं। जिनेन्द्र कहाँ राग के कर्ता हैं ? उन्हें है नहीं और कर्ता नहीं तथा यहाँ है परन्तु वह इसके स्वरूप में नहीं। कोई कहता है कि वीतराग को तो राग नहीं है, इसलिए कर्ता नहीं है परन्तु यहाँ भी तू वीतरागस्वरूप है, वह राग का कर्ता है ही नहीं। समझ में आया ? अद्भुत बात भाई ! गड़बड़ होती है, चारों ओर बेचारे जाने कहाँ धर्म और कहाँ मोक्ष मिलेगा ? धर्म और मोक्ष की खान तो तू आत्मा है। कहीं से लटके ऐसा नहीं, ऊपर से पटके – ऐसा नहीं ऐसे जिनेन्द्र भगवानस्वरूप आत्मा है।

शुद्धात्मा में और जिनेन्द्र में कुछ भी भेद मत समझो.... भिन्न मत कर, भिन्न मत हो; ये जुदा हुए, वे एक नहीं होते। आहा...हा... ! कोई कहे न, अलग पड़े उनके मन अलग, 'अन्न अलग उनके मन अलग' लोग यह कुछ कहते हैं न ? सगे पिता और पुत्र अलग पड़े तो अन्न अलग, मन अलग हो गया। भाई ! हमने रोटियों के लिए तेरी बहू को और तेरी माँ को बनता नहीं, इसलिए अलग होते हैं, लो ! परन्तु पड़े पीछे अन्दर कुछ फेरफार हुए बिना नहीं रहता। रतिभाई ! होता है या नहीं ऐसा ? वह बहू आयी हो बेचारी कुछ छूट से खर्च करने के लिए, भाई ! अपने पास दो-पाँच लाख है तो दो-पाँच-छह हजार खर्च कर सकते हैं। वह (सास) होवे कंजूस, वह खर्च नहीं करे। अपने ऐसा नहीं होता, खर्च नहीं करते। ऐ...ई... ! तब हम अलग हो जाते हैं। इससे पहले मन में जरा ठीक हो वे अलग पड़ने के बाद मन में मिलाप नहीं रहता, हैं ? इसी प्रकार सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा की दशा, उससे यहाँ अलग पड़े, राग का कर्ता हो तो अलग हो तो आत्मा नहीं रहे वह। समझ में आता है न ? जिसके अन्न अलग, उसका मन अलग हो गया। परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वरस्वरूप मैं आत्मा हूँ, उसकी जिसे अन्तर में प्रतीति (हुई), उसने रागवाला और निमित्तवाला आत्मा नहीं जाना, नहीं माना। ऐसा मानने से उससे अलग नहीं पड़ा, परमात्मा से अलग नहीं पड़ा और (अलग) पड़ा तो राग मेरा, निमित्त मेरा यह परमात्मा से अलग पड़ा, वह अलग में जाएगा, भटकेगा। समझ में आया ? आहा...हा... !

मुमुक्षु – पूरा बाहर में ही मशगुल हो गया है।

उत्तर – हैं ? पूरा कहाँ है और कहाँ मशगुल हुआ ? – इसकी इसे खबर नहीं है। आहा...हा... !

मोक्खह कारण णिच्छइ एऊ देखो ! क्या कहते हैं ? **मोक्ष का साधन निश्चयनय से....** यही मानो। दूसरा मोक्ष का साधन कोई नहीं है। यह वीतरागस्वभाव वीतरागता, परमात्मा का, सिद्ध भगवान का, अरहन्त का है – ऐसा ही मेरा स्वभाव है। ऐसा अन्तर में ध्यान करके, उसमें एकाकार होना ही मोक्ष का साधन है; दूसरा कोई मोक्ष का साधन नहीं है। कहो, मोक्षस्वरूप भी स्वयं और उसके साधन के स्वभावरूप होना, वह भी स्वयं। आहा...हा... !

यहाँ तो **मोक्खह कारण णिच्छइ एऊ** देखो ! कारण यह एक ही दिया। दूसरा व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का कारण है, निमित्त मोक्ष का कारण है और गुरु मोक्ष के कारण में है – यह सब यहाँ तो झकझोर कर निकाल दिया है, हैं ?

मुमुक्षु – होवे वह निकाले न ? है अवश्य न ?

उत्तर – था न, दूसरा नहीं ? उसके घर रहा, यहाँ कहाँ है ?

यहाँ तो परमात्मा और आत्मा को अलग नहीं जानना अर्थात् सर्वज्ञ वीतरागी पर्यायवाली पूर्ण परमात्मा है, मैं भी सर्वज्ञ पर्याय भले प्रगट नहीं परन्तु सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हो – ऐसी मेरी ताकत है, ऐसा मैं वीतरागस्वरूप हूँ। उसके आश्रय से प्रगट हुई जो दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता, वह स्वरूप का साधन है, मोक्ष का साधन है; बीच में राग-वाग आवे वह साधन-फाधन नहीं है। आहा...हा... ! वीतरागभाव से आत्मा को देखना, जानना, ज्ञाता-दृष्टारूप जानना और देखना, यही मोक्ष का साधन है। रागवाला और राग का कर्ता और मैंने व्यवहार किया, व्यवहार से साधन हुआ – वह मोक्ष का साधन नहीं है।

मुमुक्षु – बड़ा वर्णन करके बड़ा बना दिया।

उत्तर – वर्णन करके नहीं, है ऐसा वर्णन किया। ऐसा बड़ा है, उसे वाणी में वर्णन किया। उस वाणी में पूरा कहाँ आता था ? आहा...हा... ! उसकी महिमा तो वह जाने, तब जाने। जाने, वह माने और माने वह उसमें से वापस हटे नहीं। समझ में आया ? कहो, समझ में आया या नहीं ? मनहरभाई ! वहाँ सूरत-वूरत में कुछ समझ में आये वैसा नहीं है। वहाँ

धूल में कहीं नहीं है। इस भंगार के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। ए...ई... ! मनसुखभाई ! वह फिर निवृत्त हो तो किसी दिन थोड़ा पढ़ता हो परन्तु उसमें इस रीति की समझ, समझ में नहीं आती। यह तो उसकी योग्यता ऐसी हो, तब ही समझ में आती है।

यहाँ तो **मोक्खह कारण** – ऐसा कहा, भाई ! आहा...हा... ! इन वीतराग परमात्मा और तेरे भाव में, दोनों में अन्तर मत डाल, यही मोक्ष का कारण है। (अन्तर मत डाल) तो मोक्ष का कारण है। अन्तर डाले कि मैं राग का कर्ता और मैं कर्मवाला और रागवाला और यह वाला.... अन्तर पड़ा यह मोक्ष का कारण, साधन नहीं है। यह बन्धन का साधन है। आहा...हा... ! निश्चय से – निश्चय से अर्थात् सत्य से ऐसा जान। वास्तव में सत्य ऐसा ही है। भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है। जैसे विकल्प का कर्ता वीतराग नहीं, वैसे यह भी कर्ता नहीं। वे सिद्धभगवान निमित्त को मिलाते नहीं, छोड़ते नहीं; जानते हैं। ऐसे मैं भी निमित्त को मिलाऊँ या छोड़ूँ, यह मुझमें नहीं है। मैं तो जानने देखनेवाला हूँ। ऐसे जानने -देखनेवाले को सर्वज्ञ परमात्मा जैसा जानने से वही मोक्ष का कारण होता है। आहा...हा... !

अब ऐसी बात स्पष्ट की है परन्तु.... आहा...हा... ! अरे... ! अनन्त काल से भूला, भाई ! आहा...हा... ! और भूल को मिटाने का अवसर आया, वहाँ ऊँ...ऊँ... करके बैठा कि यह नहीं, ऐसा नहीं। अरे... ! ठीक बापू ! भाई ! (तेरी भूल) तुझे रोकती है, भाई ! समझ में आया ? ऐसे अवसर में यह अवसर जाता है, हाँ ! यह अवसर जाने के बाद अनाज जम जायेगा, और फिर तुझे नहीं भायेगा। आहा...हा... ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा और परमात्मा में कुछ अन्तर नहीं है। उनकी नात और जात का मैं हूँ। समझ में आया ? आनन्दघनजी ने कहा है न धर्म में ? 'धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगसूं, भंगमां पड़सू रे, प्रीत जिनेश्वर.... बीजो मनमन्दिर आणूं नहीं, ऐ एम कुलवट रीत जिनेश्वर... धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंगसूं.... धर्म जिनेश्वर शरण गया पछी, कोई न बाँधे कर्म जिनेश्वर, धर्म जिनेश्वर गाऊँ रंग सूं...' आनन्दघनजी हो गये हैं, शान्तिभाई ! सुना है कहीं ? व्यापार के कारण कुछ भी फुरसत कहाँ है ?

भगवान आत्मा.... ! ऐसा कहते हैं, नाथ ! धर्म जिनेश्वर गाऊँ.... धर्म जिनेश्वर मैं

हूँ। मेरे गीत, जिनेश्वर के गीत मैं मेरे गाता हूँ। 'भंग मा पडसू रे प्रीत प्रभुजी'.... प्रभु मेरे एकता में भंग मत पड़ना... मेरे स्वरूप में वीतरागपना है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान में भंग मत पड़ो। 'भंग मा पडसू रे प्रीत जिनेश्वर, बीजो मनमन्दिर आणू नहीं'.... राग विकार और संयोग को मेरे स्वभाव में मैं एकत्वरूप से नहीं लाऊँगा। 'ए अम कुलवट रीत जिनेश्वर...' हे तीर्थंकर! तेरे कुल के वट की रीति में यह आता है, कहते हैं। आपने राग और संयोग को स्वभाव में नहीं मिलाया, नहीं मिलाया, ऐसे परमात्मा हम आपके भगत हैं। आहा...हा...! हम भी राग के विकल्प दया, दान, व्रत के विकल्प और संयोग को आत्मा में नहीं आने देंगे, एकपने नहीं होने देंगे। हम आपके जैसे, एकरूप कैसे होने देंगे? आहा...हा...! रतिभाई! आहा...हा...! परन्तु किसी दिन बात क्या है? उसकी मर्यादा चैतन्य की क्या है? वीतरागता की क्या है? पर्याय की अल्पज्ञता की मर्यादा की हद क्या है? विकार के स्वरूप की स्थिति क्या है? उसका मूल पता लिये बिना यह पता कहाँ से आयेगा? आहा...हा...!

मुमुक्षु – रुक गया बाहर में।

उत्तर – रतनलालजी! दूसरे चिल्लाते हैं, अरे... सोनगढ़वाले... अरे! भगवान! सुन रे सुन, प्रभु!

भाई! इस तेरे स्वरूप की पूर्णता में अपूर्णता कैसे कहना? तेरे स्वरूप को विकारवाला कैसे कहना? तेरे स्वरूप को संयोग में रहा – ऐसा कैसे कहना, सम्बन्धवाला? समझ में आया? वह सम्बन्धरहित, विकाररहित अल्पज्ञतारहित – ऐसा आत्मा, परमात्मा का स्वभाव वैसा मेरा स्वभाव, निश्चयनय से तू सत्यार्थरूप से ऐसा ही जान। ऐसा जानने से तुझे वीतरागता प्रगट होगी; वीतरागता से तुझे अल्प काल में केवलज्ञान होगा, उसमें अन्तर नहीं है। कहो, समझ में आया?

णिच्छइ एऊ वियाणि अन्दर थोड़े छह कारक डाले हैं। सिंह का दृष्टान्त दिया है। **जैसे कोई सिंह का बालक सिंह होने पर भी दीन पशु बनकर रहे....** लो! यह सिंह का बच्चा बकरों में पहले से पला, सिंह का बच्चा बकरों के साथ रहा तो (ऐसा मानने लगा) हम सब एक जाति के हैं। जहाँ एक सिंह आया, दहाड़ मारी, इस दहाड़ से

वह भागा नहीं, दूसरे भागे – बकरे भागे – ऐसी जहाँ दहाड़ आयी, वहाँ भागे, यह क्यों खड़ा रहा ? तू तो इसके साथ में है न। तुम्हारी दहाड़ से मुझे कुछ त्रास नहीं लगा। मैं तेरी जाति का हूँ, हाँ! तेरा मुख देखना हो तो, बकरे के मुँह जैसा है या नहीं। पानी में देख! देख तेरा मुँह मेरे जैसा है या बकरे जैसा है ? समझ में आया ? अरे! तू बकरे के टोले में नहीं रह! आ जा सिंह के टोले में, भाई! इसी प्रकार राग-द्वेष और अज्ञान में पड़ा हुआ, हम रागी, द्वेषी, अज्ञानी, एक इन्द्रिय की जाति के और संसार की जाति के हैं। बकरों में एकमेक हो गया, मूर्ख! दहाड़ पड़ी परमात्मा की, तू परमात्मा मेरी जाति का (मेरी) जाति का, हाँ! मैं नहीं ऐसा नहीं। समझ में आया ? देख तो सही अपनी चीज को, मुझ में पूर्णता प्रगटी वैसी पूर्णता प्रगट होने की तुझमें ताकत है या नहीं ? सन्मुख तो देख अन्दर। आहा...हा...!

श्रीमद् थे न ? श्रीमद्। वे एक बार जंगल जा रहे थे। जंगल... दिशा, उसमें एक ग्वाला खड़ा था, ऐसे देखते-देखते ग्वाला देखा ही करे। कहाँ जाते हैं ? ऐसे शान्त, स्थिर, दूसरे व्यापारी की रीति से इनकी रीति अलग, चलने की लाइन अलग, विचार से, मन्थन से चलते हों.... यह कहाँ जाते हैं ? ऐसे का ऐसा देखा करें, फिर उसे लगा कि निश्चित अनुसरण करने की इस ग्वाले की टेव है। (इसलिए कहा) भाईयों! मैं कहूँ वैसा करो। मैं एक परमेश्वर हूँ – ऐसा आँख बन्द करके ध्यान करो। ये बनिया, बनिया साधारण हो (वे ऐसा कहें), भाई साहब! अरे...रे...! परमेश्वर कहते हैं। अभी परमेश्वर होंगे ?

श्रीमद् ने कहा कि अरे...! भाईयों! परमेश्वर होओ, भाई! तेरा स्वरूप (परमेश्वरस्वरूप है) मैं परमेश्वर हूँ – ऐसा आँख बन्द करके विचार करो, बस! फिर अनुकरण करने की बुद्धि थी, इसलिए यह परमेश्वर नहीं – ऐसा कैसे हो ? इस भेद का कोई विचार ही नहीं। ऐसे तीन लोक के नाथ की आवाज आयी थी तू मेरे जैसा मेरी जाति का है। कर विचार अन्दर, उसने भी... भाईसाहब! इतने-इतने कर्म लगे हैं, इतना-इतना हमने राग किया है। ए... निकाचित् कर्म बाँधे हैं, यहाँ चिल्लाते-चिल्लाते (कहते हैं) निकाचित् कर्म पड़े हैं। कहा, परन्तु किसे, तुझे निकाचित् ? देख तो सही तू! कर्म जड़ में रहे, राग-राग में रहा; अल्पज्ञता पर्याय में रही; पूर्ण स्वरूप में अल्पज्ञान विकार और कर्म-फर्म नहीं आते।

आहा...हा... ! आदत पड़ गयी है न, आदत। देख तो सहीं, बकरे के झुण्ड में है। तेरी आँखें चमड़ी है, ऐसा देखा है कभी ? ऐसे-ऐसे देखा किया है। यह बकरा है ऐसा मैं हूँ बकरे के झुण्ड में पला हूँ, दहाड़ आयी तो त्रास नहीं हुआ। सुन तो सही ! मेरी जाति का है। दहाड़ आयी और त्रास नहीं हुआ और इन बकरों को त्रास हुआ। जाति में अन्तर है या नहीं ? इतना पता नहीं पड़ता ? तब कहता है पूरा शरीर फर्क है या नहीं ? तो ऐसा किस प्रकार देखे ? पानी में देख, हाँ.... ! मेरा मुँह इनके जैसा लगता है।

इसी प्रकार भगवान के चैतन्य के पानी का तेज अन्दर भरा है, उसे तू एक बार विश्वास द्वारा 'परमात्मा और मुझ में कुछ अन्तर नहीं है' – (ऐसा देख)। आहा...हा... ! समझ में आया ? इस मेरे परमात्मा की दशा का कर्ता में, साधन में, कार्य मेरा, मैं ही परमात्मा होकर मेरी दशा को मैं देता हूँ, मेरे द्वारा देता हूँ और मेरे आधार से करनेवाला मैं परमात्मा हूँ। राग और निमित्त और किसी के आधार से मेरा कार्य हो – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु – एक कार्य में दो कारण नहीं आते ?

उत्तर – कारण आये अब, पूरा आत्मा आया। भगवान जिसके पास खड़ा, उसे दूसरे की आवश्यकता क्या है... ? यहाँ तो ऐसा कहते हैं। भेद न जान ! हैं ?

मुमुक्षु – बकरा मैं... मैं... करने .....

उत्तर – वह तो बकरा मैं... मैं... किया ही करेगा। सिंह अन्दर आया हो, वह उसमें नहीं रह सकेगा। समझ में आया ? आहा...हा... ! ऊँचा किया है न ! ऊँचा ! उसके रोम, ऊँचे कर डाले सुन तो सही, मूर्ख ! कौन है तू ? किसकी जाति का है ? दशाश्रीमाली बनिया हो, पाँच करोड़ या दस करोड़ का व्यक्ति हो, लड़के का विवाह होता हो (और दूसरा) बनिये का – दशाश्रीमाली का भले गरीब व्यक्ति हो, पाँच-पचास का वेतन लाता हो तो भी उसके मण्डप में आ जायेगा। मण्डप में आ पड़ेगा। मेरी जाति का प्रीतिभोज है, हम एक जाति के हैं, हैं... भाई ! नीचकुल का लड़का हो, घर में बंगला हो (परन्तु) अन्दर नहीं जायेगा। छुआरे का मन हो गया, लाओ न छुआरा ले आओ न ? दरवाजे पर खड़ा रहेगा, दरवाजे के समीप खड़ा रहेगा। छुआरा लेकर चला जाएगा, दूसरा अन्दर चला जायेगा।

इसी प्रकार सिद्ध भगवान के मण्डप में प्रविष्ट होनेवाले हम आत्मा हैं, कहते हैं। हम दूर रहें, आगे रहें, दरवाजे पर रहें, ऐसे हम नहीं हैं। एक बार तो निर्णय कर आहा...हा...! हम राग करें, दया पालें, कुछ भक्ति करें, कुछ व्रत पालें तो भगवान आत्मा हाथ में आवे। मर गया... मूर्ख! अब सुन न! राग में आत्मा हाथ में आता होगा? तू राग है? तू राग है? तू पर है? तू विकार है कि उससे अपने को लाभ हो? समझ में आया? ए... प्रवीणभाई! राम... राम... राम... राम... (करे)।

यहाँ तो बहुत लम्बी बात ली है। थोड़ा तप लिया है, हाँ! इस ओर, देखो पृष्ठ ११२ है न! **सिद्ध भगवान स्वयं के द्वारा ही अपनी स्वानुभूति की तपश्चर्या निरन्तर तपते हुए परम तप के धारक हैं।** वे दश धर्म लिये हैं न? वे। भगवान! यह तपधर्म, सिद्ध में भी तपधर्म हैं और मुझ में भी है। कौन सा तप? **सिद्धभगवान स्वयं के द्वारा ही अपनी स्वानुभूति....** अपने आनन्द का अनुभव सिद्धभगवान स्वयं करते हैं। ऐसी तपस्या आनन्द से निरन्तर तप रहे हैं, वे परम तप के धारक हैं। मैं भी ऐसा हूँ। **मैं भी स्वात्माभिमुख होकर अपनी ही स्वात्मरमणता की अग्नि में निरन्तर अपने को तपाता हुआ परम इच्छानिरोध तप गुण का स्वामी हूँ।** सिद्ध के साथ मिलाया है। सिद्ध के साथ.... वे है न... उनके जैसा तू। समझ में आया? भगवान आत्मा में और सिद्ध आत्मा में कोई अन्तर नहीं है; इस प्रकार उनमें अन्तर निकाल दे तो सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। यही तेरे मोक्ष का साधन है। दूसरा कोई साधन नहीं है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)